

इति कथाकोशे वात्सल्याङ्गे विष्णुकुमारमुनेः कथा समाप्ता ।

१३. श्रीवज्रकुमारमुनेः कथा

प्रणम्य परमात्मानं श्रीजिनं त्रिजगद्गुरुम् । वक्ष्ये प्रभावनाङ्गेऽहं कथां वज्रकुमारजाम् ॥१॥
हस्तिनागपुरे रम्ये बलनाम्नो महीपतेः । पुरोहितोभवत्तस्य गरुडाख्यो विचक्षणः ॥२॥
तत्पुत्रः सोमदत्तोभून्नाना शास्त्रसरित्पतेः । पारगः परमानन्द-दायकः सज्जनादिषु ॥३॥
अहिच्छत्रपुरं गत्वा त्वेकदासौ विशालधीः । सुभूतिं मातुलं प्राह भो माम् विनयान्वितः ॥४॥
राजानं दुर्मुखाख्यं मे दर्शय त्वं कृपापरः । गर्वितेन प्रभुस्तेन दर्शितो नैव तस्य सः ॥५॥
ततोसौ गृहिलो भूत्वा सभायां भूपतेः स्वयम् । गत्वाशीर्वचनं तस्मै दत्वा पुण्यप्रभावतः ॥६॥
नाना शास्त्रप्रवीणत्वं स्वं प्रकाशयैकहेलया । प्राप्तो मंत्रिपदं दिव्यं स्वशक्तिः शर्मदायिनी ॥७॥
तथाभूतं तमालोक्य सोमदत्तं स मातुलः । सुभूतिर्विधिना तस्मै यज्ञदत्तां सुतां ददौ ॥८॥
एकदा यज्ञदत्ताया गर्भिण्याया हृदोऽभवत् । आम्रपक्वफलास्वादे प्रावृषि स्त्रीस्वभावतः ॥९॥

द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष गए। वे ही विष्णुकुमार मुनिराज मुझे भवसमुद्र से पार कर मोक्ष प्रदान करें ॥८९-९१॥

१३. वज्रकुमार की कथा

संसार के परम गुरु जिनभगवान् को नमस्कार कर मैं प्रभावना अंग के पालन करने वाले श्री वज्रकुमार मुनि की कथा लिखता हूँ ॥१॥

जिस समय की यह कथा है, उस समय हस्तिनापुर के राजा थे बल । वह राजनीति के अच्छे विद्वान् थे, बड़े तेजस्वी थे और दयालु थे । उनके मंत्री का नाम था गरुड़ । उसका एक पुत्र था । उनका नाम सोमदत्त था । वह सब शास्त्रों का विद्वान् था और सुन्दर भी बहुत था । उसे देखकर सब को बड़ा आनन्द होता था । एक दिन सोमदत्त अपने मामा सुभूति के यहाँ गया, जो कि अहिच्छत्रपुर में रहता था । उसने मामा से विनयपूर्वक कहा-मामाजी, यहाँ के राजा से मिलने की मेरी बहुत उत्कंठा है । कृपाकर आप उनसे मेरी मुलाकात करवा दीजिये न? सुभूति ने अभिमान में आकर अपने महाराज से सोमदत्त की मुलाकात नहीं कराई सोमदत्त को मामा की यह बात बहुत खटकी । आखिर वह स्वयं ही दुर्मुख महाराज के पास गया और मामा का अभिमान नष्ट करने के लिए राजा को अपने पाण्डित्य और प्रतिभाशालिनी बुद्धि का परिचय कराकर स्वयं भी उनका राजमंत्री बन गया । ठीक भी है सबको अपनी ही शक्ति सुख देने वाली होती है ॥२-७॥

सुभूति को अपने भानजे का पाण्डित्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई उसने उसके साथ अपनी यज्ञदत्ता नाम की पुत्री को ब्याह दिया । दोनों दम्पति सुख से रहने लगे । कुछ दिनों बाद यज्ञदत्ता के गर्भ रहा ॥८-९॥

तान्यालोकितुं विप्रो गतश्चाप्रवनं तदा। अकालेऽपि सुधीरोऽत्र किं करोति न साहसम् ॥१०॥
तत्रान्वेषयता तेन सहकारद्रुमेषु च। एकोह्याप्रतरु-दृष्टः सुमित्रमुनिना श्रितः ॥११॥
नाना फलौघसम्पन्नो महद्भिः सेवितो महान्। शोभते स्म तरुः सोपि जैनधर्म इवापरः ॥१२॥
प्रभावोयं मुनेरस्य द्विजो ज्ञात्वेति चेतसि। तान्यादाय फलान्युच्चैः प्रेषयामास योषितः ॥१३॥
स्वयं स्थित्वा मुनेः पाद-मूलेसौ भक्तिनिर्भरः। नत्वा तं त्रिजगत्पूतं पृष्टवान्सोमदत्तवाक् ॥१४॥
भो मुने करुणासिन्धो सारं किं भुवनत्रये। तदहं श्रोतुमिच्छामि श्रीमतां मुखपद्मतः ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा मुनिनाथोसौ सुमित्राख्योवदत्तराम्। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्त-धर्म एव विचक्षण ॥१६॥
सोपि वत्स द्विधा प्रोक्तः स्वर्गमोक्षसुखप्रदः। मुनिश्रावकभेदेन भवभ्रमणनाशकः ॥१७॥
तत्राद्यो दशधा धर्मो मुनीनां गुणशालिनां। रत्नत्रयादिभिश्चैव जिनेन्द्रैः परिकीर्तितः ॥१८॥
दानपूजादिभिः शील-प्रोषधैश्च शुभश्रिये। भवेत्परोपकाराद्यैः श्रावकाणां वृषोत्तमः ॥१९॥

समय चातुर्मास का था। यज्ञदत्ता को दोहद उत्पन्न हुआ। उसे आम खाने की प्रबल उत्कण्ठा हुई स्त्रियों को स्वभाव से गर्भावस्था में दोहद उत्पन्न हुआ ही करते हैं। सो आम का समय न होने पर भी सोमदत्त वन में आम ढूँढ़ने को चला। बुद्धिमान् पुरुष असमय में भी अप्राप्त वस्तु के लिए साहस करते ही हैं। सोमदत्त वन में पहुँचा, तो भाग्य से उसे सारे बगीचे में केवल एक आम का वृक्ष फला हुआ मिला। उसके नीचे एक परम महात्मा योगिराज बैठे हुए थे। उनसे वह वृक्ष ऐसा जान पड़ता था, मानो मूर्तिमान् धर्म है। सारे वन में एक ही वृक्ष को फला हुआ देखकर उसने समझ लिया कि यह मुनिराज का प्रभाव है। नहीं तो असमय में आम कहाँ? वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उस पर से बहुत से फल तोड़कर अपनी प्रिया के पास पहुँचा दिये और आप मुनिराज को नमस्कार कर भक्ति से उनके पाँवों के पास बैठ गया। उसने हाथ जोड़कर मुनि से पूछा-प्रभो, संसार में सार क्या है? इस बात को आप के श्रीमुख से सुनने की मेरी बहुत उत्कण्ठा है। कृपाकर कहिए ॥१०-१५॥

मुनिराज बोले-वत्स, संसार में सार-आत्मा को कुगतियों से बचाकर सुख देने वाला, एक धर्म है। उसके दो भेद हैं-१. मुनिधर्म, २. श्रावक धर्म। मुनियों का धर्म-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह का त्याग ऐसे पाँच महाव्रत तथा उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप आदि दस लक्षण धर्म और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसे तीन रत्नत्रय, पाँच समिति, तीन गुप्ति, खड़े होकर आहार करना, स्नान न करना, सहनशक्ति बढ़ाने के लिए सिर के बालों का हाथों से ही लुंचन करना, वस्त्र का न रखना आदि हैं और श्रावक धर्म-बारह व्रतों का पालन करना, भगवान् की पूजा करना, पात्रों को दान देना और जितना अपने से बन सके दूसरों पर उपकार करना, किसी की निन्दा बुराई न करना, शान्ति के साथ अपना जीवन बिताना आदि है। मुनिधर्म का पालन सर्वदेश करेंगे अर्थात् स्थावर जीवों की भी हिंसा वे नहीं करेंगे और श्रावक इसी व्रत का पालन एकदेश अर्थात् स्थूल रूप से करेगा। वह त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करेगा और स्थावर जीव-वनस्पति आदि को अपने काम लायक उपयोग में लाकर शेष की रक्षा करेगा ॥१६-१९॥

इत्यादिधर्मसद्भावं श्रुत्वा श्रीमुनिभाषितम्। महावैराग्यसम्पन्नो नत्वा तं मुनिनायकम् ॥२०॥
 दीक्षामादाय जैनेन्द्रिं सर्वपापप्रणाशिनीम्। आगमाम्भोधिसत्पारं प्राप्तोसौ गुरुभक्तितः ॥२१॥
 ततो नाभिगिरिं गत्वा सोमदत्तो महामुनिः। स्थित्वाऽऽतापनयोगेन सद्बुद्धाने संश्रितः सुधीः ॥२२॥
 अथातो यज्ञदत्ता सा ब्राह्मणी सुषुवे सुतम्। दिव्यं शर्माकरं पूज्यं सुकाव्यं वा सतां मतिः ॥२३॥
 एकदा सा समाकर्ण्य भर्तृवृत्तान्तमद्भुतम्। बन्धूनामग्रतो गत्वा जगादाश्रुविलोचना ॥२४॥
 बन्धुवर्यैः समं गत्वा ततो नाभिगिरिं द्रुतम्। दृष्ट्वाऽऽतापनयोगेन संस्थितं मुनिसत्तमम् ॥२५॥

श्रावकधर्म परम्परा से मोक्ष का कारण है और मुनिधर्म द्वारा उसी पर्याय से भी मोक्ष जाया जा सकता है। श्रावक को मुनिधर्म धारण करना ही पड़ता है क्योंकि उसके बिना मोक्ष होता ही नहीं। जन्म-जरा-मरण का दुःख बिना मुनिधर्म के कभी नहीं छूटता। इसमें भी एक विशेषता है। वह यह कि जितने मुनि होते हैं, वे सब मोक्ष में ही जाते होंगे ऐसा नहीं समझना चाहिए। उसमें परिणामों पर सब बात निर्भर है। जिसके जितने-जितने परिणाम उन्नत होते जायेंगे और राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आत्मशत्रु नष्ट होकर अपने स्वभाव की प्राप्ति होती जायेगी वह उतना ही अन्तिम साध्य मोक्ष के पास पहुँचता जायेगा। पर यह पूर्ण रीति से ध्यान में रखना चाहिए कि मोक्ष होगा तो मुनिधर्म ही से।

इस प्रकार श्रावक और मुनिधर्म तथा उनकी विशेषताएँ सुनकर सोमदत्त को मुनिधर्म ही बहुत पसन्द आया। उसने अत्यन्त वैराग्य के वश होकर मुनिधर्म की ही दीक्षा ग्रहण की, जो कि सब पापों की नाश करने वाली है। साधु बनकर गुरु के पास उसने खूब शास्त्राभ्यास किया। सब शास्त्रों में उसने बहुत योग्यता प्राप्त कर ली। इसके बाद सोमदत्त मुनिराज नाभिगिरी नामक पर्वत पर जाकर तपश्चर्या करने लगे और परीषह सहन द्वारा अपनी आत्मशक्ति को बढ़ाने लगे ॥२०-२२॥

इधर यज्ञदत्ता के पुत्र हुआ। उसकी दिव्य सुन्दरता और तेज को देखकर यज्ञदत्ता बड़ी प्रसन्न हुई। एक दिन उसे किसी के द्वारा अपने स्वामी के समाचार मिले। उसने वह हाल अपने घर के लोगों से कहा और उनके पास चलने के लिए उनसे आग्रह किया। उन्हें साथ लेकर यज्ञदत्त नाभिगिरी पर पहुँची। मुनि इस समय तापसयोग से अर्थात् सूर्य के सामने मुँह किए ध्यान कर रहे थे। उन्हें मुनिवेष में देखकर यज्ञदत्ता के क्रोध का कुछ ठिकाना नहीं रहा। उसने गर्जकर कहा-दुष्ट! पापी!! यदि तुझे ऐसा करना था मेरी जिन्दगी बिगाड़नी थी, तो पहले ही से मुझे न ब्याहता? बतला तो अब मैं किस के पास जाकर रहूँ? निर्दय! तुझे दया भी न आई जो मुझे निराश्रय छोड़कर तप करने को यहाँ चला आया? अब इस बच्चे का पालन कौन करेगा? जरा कह तो सही! मुझ से इसका पालन नहीं होता। तू ही इसे लेकर पाल। यह कहकर निर्दयी यज्ञदत्ता बेचारे निर्दोष बालक को मुनि के पाँवों में पटक कर घर चली गई उस पापिनी को अपने हृदय के टुकड़े पर इतनी भी दया नहीं आई कि मैं सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जीवों

महाकोपेन सन्तप्ता यज्ञदत्ता जगाद च। रे रे दुष्ट त्वया कष्टं परिणीता कथं यतः ॥२६॥
 मां विमुच्य तपःप्रीत्या संस्थितोसि शिलोच्चये। अतस्ते त्वं गृहाणेमं पुत्रं पालय साम्प्रतम् ॥२७॥
 इत्युक्त्वा निष्ठुरं वाक्यं तं पुत्रं निर्दयाशया। धृत्वा तत्पादयोरग्रे कोपतः स्वगृहं गता ॥२८॥
 सिंहव्याघ्रसमाकीर्णं पर्वते तत्र निर्दया। त्यक्त्वा बालं गता सेत्थं किं न कुर्वन्ति योषितः ॥२९॥
 अत्रान्तरेऽमरावत्या नगर्याश्च खगाधिपः। श्रीदिवाकरदेवाख्यः कुटुम्बकलहे सति ॥३०॥
 स पुरंदरदेवेन लघुभ्रात्रा महायुधि। राज्यान्निर्घाटितो ज्येष्ठः सकलत्रो विषण्णधीः ॥३१॥
 ततो विमानमारुह्य जैनीं यात्रां सुखप्रदाम्। नाना तीर्थेषु संकर्तुं निर्गतो दुर्गतिच्छिदम् ॥३२॥
 पर्यटंश्च नभोभागे नाभिपर्वतसंस्थितम्। दृष्ट्वा तं मुनिमायातो वन्दितुं भक्तिनिर्भरः ॥३३॥
 तत्र बालं विलोक्योच्चैः प्रस्फुरत्कान्तिमद्भुतम्। मुनीन्द्रपादपद्माग्रे विकसन्मुखपङ्कजम् ॥३४॥
 ज्ञात्वा तं पुण्यसंयुक्तं समाहूय प्रहर्षतः। दत्तवान्निजभार्यायै गृहाणेति सुतं प्रिये ॥३५॥
 संविलोक्य करौ तस्य वज्रचिह्नादिशोभितौ। नाम्ना वज्रकुमारोय-मित्युक्त्वा तौ गृहं गतौ ॥३६॥
 स्वमात्रापि विमुक्तोसौ लालितः खेचरस्त्रिया। प्रकृष्टपूर्वपुण्यानां न हि कष्टं जगत्त्रये ॥३७॥
 तथासौ स्वगुणैः सार्द्धं वृद्धिं सम्प्राप्तवान्सुधीः। कुर्वन्सर्वजनानन्दं द्वितीयेन्दुरिवामलः ॥३८॥
 कनकाख्यपुरे राजा नाम्ना विमलवाहनः। स बालस्य भवत्येव तस्य कृत्रिममातुलः ॥३९॥

से भरे हुए ऐसे भयंकर पर्वत पर उसे कैसे छोड़ जाती हूँ? उसकी कौन रक्षा करेगा? सच तो यह क्रोध के वश हो स्त्रियाँ क्या नहीं करती? ॥२३-२९॥

इधर तो यज्ञदत्ता पुत्र को मुनि के पास छोड़कर घर पर गई और इतने ही में दिवाकर देव नाम का एक विद्याधर इधर आ निकला। वह अमरावती का राजा था। पर भाई-भाई में लड़ाई हो जाने से उसके छोटे भाई पुरन्दर ने उसे युद्ध में पराजित कर देश से निकाल दिया था। सो वह अपनी स्त्री को साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिए चल दिया। यात्रा करता हुआ वह नाभिपर्वत की ओर आ निकला। पर्वत पर मुनिराज को देखकर उनकी वन्दना के लिए नीचे उतरा। उसकी दृष्टि उस खेलते हुए तेजस्वी बालक के प्रसन्न मुखकमल पर पड़ी। बालक को भाग्यशाली समझकर उसने अपनी गोद में उठा लिया और प्रसन्नता के साथ उसे अपनी प्रिया को सौंपकर कहा-प्रिये, यह कोई बड़ा पुण्य पुरुष है। आज अपना जीवन कृतार्थ हुआ जो हमें अनायास ऐसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसकी स्त्री भी बच्चे को पाकर बहुत खुश हुई उसने बड़े प्रेम के साथ उसे अपनी छाती से लगाया और अपने को कृतार्थ माना। बालक होनहार था। उसके हाथों में वज्र का चिह्न देखकर विद्याधर महिला ने उसका नाम भी वज्रकुमार रख दिया। इसके बाद दम्पति मुनि को प्रणाम कर अपने घर पर लौट आए। यज्ञदत्ता तो अपने पुत्र को छोड़कर चली आई, पर जो भाग्यवान् होता है उसका कोई न कोई रक्षक बनकर आ ही जाता है। बहुत ठीक लिखा है-पुण्यवानों को कहीं कष्ट प्राप्त नहीं होता। विद्याधर के घर पर पहुँच कर वज्रकुमार द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा और अपनी बाल-लीलाओं से सबको आनन्द देने लगा जो उसे देखता वही उसकी स्वर्गीय सुन्दरता पर मुग्ध हो उठता था ॥३०-३८॥

तत्समीपे कुमारोसौ नाना शास्त्रमहार्णवम्। तरति स्म यथा सर्वे खेचरा विस्मयं गताः ॥४०॥
 अथैकदा खगाधीशः सुधीर्गरुडवेगवाक्। तद्भार्याङ्गवती नाम्नी सती तद्गुणमण्डिता ॥४१॥
 तयोः पवनवेगाख्या पुत्री सद्रूपशालिनी। हीमन्तपर्वते पूते विद्यां प्रज्ञप्तिमद्भुताम् ॥४२॥
 साधयन्ती स्थिता यावद्वदर्याः कण्टकेन च। पवनान्दोलितेनोच्चैर्विद्धा सा लोचने सती ॥४३॥
 पीडया चलचित्तायास्तस्या विद्या न सिद्ध्यति। पुण्याद्वज्रकुमारोसौ लीलया तत्र चागतः ॥४४॥
 तां विलोक्य तथाभूतां लोचनाच्चतुरोत्तमः। दूरीचकार यत्नेन कण्टकं दुर्जनोपमम् ॥४५॥
 ततस्तस्यास्तरां स्वस्थ-चित्ताया मंत्रयोगतः। सिद्धा प्रज्ञप्तिका विद्या कार्यकोटिविधायिनी ॥४६॥
 सा जगाद ततः कन्या त्वत्प्रसादेन मे ध्रुवम्। सिद्धा विद्येति भो धीर परमानन्ददायिनी ॥४७॥
 अतस्त्वमेव मे भर्ता कार्यसिद्धिविधायकः। नान्यः परो नरः कोपि निर्गुणः सगुणोऽथवा ॥४८॥
 ततो गरुडवेगोसौ तत्पिता विधिपूर्वकम्। तस्मै वज्रकुमाराय तां सुतां दत्तवान्मुदा ॥४९॥
 अथ वज्रकुमारोसौ तां विद्यां स्वस्त्रियो द्रुतम्। समादाय महासैन्यं विधाय परमादरात् ॥५०॥

दिवाकर देव के सम्बन्ध से वज्रकुमार का मामा कनकपुरी का राजा विमलवाहन हुआ। अपने मामा के यहाँ रहकर वज्रकुमार ने खूब शास्त्राभ्यास किया। छोटी ही उमर में वह एक प्रसिद्ध विद्वान् बन गया। उसकी बुद्धि देखकर विद्याधर बड़ा आश्चर्य करने लगे ॥३९-४०॥

एक दिन वज्रकुमार हीमन्तपर्वत पर प्रकृति की शोभा देखने को गया हुआ था। वहीं पर एक गरुडवेग विद्याधर की पवनवेगा नाम की पुत्री विद्या साध रही थी। सो विद्या साधते-साधते भाग्य से एक काँटा हवा से उड़कर उसकी आँख में गिर गया। उसके दुःख से उसका चित्त चंचल हो उठा। उससे विद्या सिद्ध होने में उसके लिए बड़ी कठिनाता आ उपस्थित हुई। इसी समय वज्रकुमार इधर आ निकला। उसे ध्यान से विचलित देखकर उसने उसकी आँख में से काँटा निकाल दिया। पवनवेगा स्वस्थ होकर फिर मंत्र साधन से तत्पर हुई मंत्रयोग पूरा होने पर उसे विद्या सिद्ध हो गई वह सब उपकार वज्रकुमार का समझकर उसके पास आई और उससे बोली-आपने मेरा बहुत उपकार किया है। ऐसे समय यदि आप उधर नहीं आते तो कभी संभव नहीं था, कि मुझे विद्या सिद्ध होती। इसका बदला मैं एक क्षुद्र बालिका क्या चुका सकती हूँ, पर यह जीवन आपको समर्पण कर आपकी चरण दासी बनना चाहती हूँ। मैंने संकल्प कर लिया है कि इस जीवन में आपके सिवा किसी को मैं अपने पवित्र हृदय में स्थान न दूँगी। मुझे स्वीकार कर कृतार्थ कीजिए। यह कहकर वह सतृष्ण नयनों से वज्रकुमार की ओर देखने लगी। वज्रकुमार ने मुस्कुराकर उसके प्रेमोपहार को बड़े आदर के साथ ग्रहण किया। दोनों वहाँ से विदा होकर अपने-अपने घर गए। शुभ दिन में गरुडवेग ने पवनवेगा का परिणय संस्कार वज्रकुमार के साथ कर दिया। दोनों दंपति सुख से रहने लगे ॥४१-४९॥

एक दिन वज्रकुमार को मालूम हो गया कि मेरे पिता थे तो राजा, पर उन्हें उनके छोटे भाई ने लड़ झगड़कर अपने राज्य से निकाल दिया है। यह देख उसे काका पर बड़ा क्रोध आया। वह पिता

श्रीदिवाकरदेवेन समं गत्वामरावतीम्। संग्रामेण ततो जित्वा तं पुरंदरदेवकम् ॥५१॥
तं दिवाकरदेवं च धर्मतातं महोत्सवैः। तद्राज्ये स्थापयामास सुपुत्रः कुलदीपकः ॥५२॥
एकदा भूपतेः पत्नी जयश्रीः प्राह कोपतः। स्वपुत्रराज्यसन्देहदृष्ट्वा तन्मान्यतां तराम् ॥५३॥
अन्येन जनितश्चान्यं संतापयति दुष्टधीः। कुपुत्रोसौ महाकष्टं स्त्रीबुद्धिर्नैव निश्चला ॥५४॥
तदा वज्रकुमारोसौ श्रुत्वा मातुः कटुश्रुतिम्। प्रोवाच वचनं तातं प्रतीत्यं भो खगेश्वर ॥५५॥
अहं कस्य सुतो देव तदाकर्ण्य प्रभुर्जगौ। किं भो पुत्र मतिभ्रंसोभवत्ते येन साम्प्रतम् ॥५६॥
महादुःखप्रदं वाक्यं वदस्येव मनोहरम्। सोपि प्राह सुधीस्तात वद त्वं सत्यमेव च ॥५७॥
अन्यथा भोजनादौ मे प्रवृत्तिर्नैव भूपते। सतां चित्ते यदा यातं तत्कथं केन वार्यते ॥५८॥

के बहुत कुछ मना करने पर भी कुछ सेना और अपनी पत्नी की विद्या को लेकर उसी समय अमरावती पर जा चढ़ा। पुरन्दरदेव को इस चढ़ाई का हाल कुछ मालूम नहीं हुआ था, इसलिए वह बात की बातों में पराजित कर बाँध लिया गया। राज्य सिंहासन दिवाकर देव के अधिकार में आया। सच है “सुपुत्रः कुलदीपकः” अर्थात् सुपुत्र से कुल की उन्नति ही होती है। इस वीर वृत्तान्त से वज्रकुमार बहुत प्रसिद्ध हो गया। अच्छे-अच्छे शूरवीर उसका नाम सुनकर काँपने लगे ॥५०-५२॥

इसी समय दिवाकरदेव की प्रिया जयश्री के भी एक और पुत्र उत्पन्न हो गया। अब उसे वज्रकुमार से डाह होने लगी। उसे एक भ्रम-सा हो गया कि इसके सामने मेरे पुत्र को राज्य कैसे मिलेगा? खैर, यह भी मान लूँ कि मेरे आग्रह से प्राणनाथ अपने पुत्र को राज्य दे तो यह क्यों उसे देने देगा? ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो—

आश्रयन्तीं श्रियं को वा पादेन भुवि ताडयेत्। -वादीभसिंह

आती हुई लक्ष्मी को पाँव की ठोकर से ठुकरावेगा? तब अपने पुत्र को राज्य मिलने में यह एक कंटक है। इसे किसी तरह उखाड़ फेंकना चाहिए। यह विचार कर मौका देखने लगी। एक दिन वज्रकुमार ने अपनी माता के मुँह से यह सुन लिया कि “वज्रकुमार बड़ा दुष्ट है। देखो, तो कहाँ तो उत्पन्न हुआ और किसे कष्ट देता है?” उसकी माता किसी के सामने उसकी बुराई कर रही थी। सुनते ही वज्रकुमार के हृदय में मानों आग बरस गई उसका हृदय जलने लगा। उसे फिर एक क्षणभर भी उस घर में रहना नरक बराबर भयंकर हो उठा। यह उसी समय अपने पिता के पास गया और बोला—पिताजी, जल्दी बतलाइए मैं किसका पुत्र हूँ? और क्यों यहाँ आया? मैं जानता हूँ कि आपने मेरा अपने बच्चे से कहीं बढ़कर पालन किया है, तब भी मुझे कृपाकर बतला दीजिए कि मेरे सच्चे पिता कौन हैं? यदि आप मुझे ठीक-ठीक हाल नहीं कहेंगे तो मैं आज से भोजन नहीं करूँगा ॥५३-५७॥

दिवाकर देव ने एकाएक वज्रकुमार के मुँह से अचम्भे में डालने वाली बातें सुनकर वज्रकुमार से कहा—पुत्र, क्या आज तुम्हें कुछ हो तो नहीं गया, जो बहकी-बहकी बातें करते हो? तुम समझदार हो, तुम्हें ऐसी बातें करना उचित नहीं, जिससे मुझे कष्ट हो ॥५८॥

विद्याधरप्रभुः प्राह ततो वृत्तान्तमादितः। सत्यमेवाग्रहेणात्र शक्यते छादितुं न हि ॥५९॥
 तं निशम्य कुमारोसौ स्ववृत्तान्तं विरक्तवान्। ततौ विमानमारुह्य वन्दितुं तं मुनीश्वरम् ॥६०॥
 तातादिबन्धुभिः सार्द्धं मथुरानिकटस्थिताम्। क्षत्रियाख्यगुहां प्राप्तो यत्रास्ते स महामुनिः ॥६१॥
 इन्द्रचन्द्रनरेन्द्राद्यैः समर्चित्तपदद्वयम्। सोमदत्तमुनिं दृष्ट्वा सन्तुष्टास्ते स्वचेतसि ॥६२॥
 त्रिः परीत्य समभ्यर्च्य नत्वा तं भक्तितो मुनिम्। संस्थितेषु सुखं तत्र सर्वलोकेषु लीलया ॥६३॥
 सोमदत्तगुरोरेग्रे महाधर्मानुरागतः। स दिवाकरदेवश्च स्ववृत्तान्तं पुनर्जगौ ॥६४॥
 तदा वज्रकुमारेण प्रोक्तं भो तात शुद्धधीः। आदेशं देहि येनाहं करोमि सुतपो ध्रुवम् ॥६५॥
 खगेशः प्राह भो पुत्र त्वत्सहायेन साम्प्रतम्। युक्तं मेऽत्र तप कर्तुं त्वं गृहाणेति मे श्रियम् ॥६६॥
 इत्यादिमधुरैर्वाक्यैर्निषिद्धोपि महीभुजा। युक्त्या सम्बोध्य तानुच्चैर्मुनिर्जातः स धीरधीः ॥६७॥
 तपो धृत्वा कुमारोसौ कन्दर्पकरिकेसरी। श्रीमज्जैनमताम्भोधौ जातः पूर्णेन्दुरद्भुतम् ॥६८॥

वज्रकुमार बोला—पिताजी मैं यह नहीं कहता कि मैं आपका पुत्र नहीं क्योंकि मेरे सच्चे पिता तो आप ही हैं, आप ही ने मुझे पालापोषा है। पर जो सच्चा वृत्तान्त है, उसके जानने की मेरी बड़ी उत्कण्ठा है; इसलिए उसे आप न छिपाइए। उसे कहकर मेरे अशान्त हृदय को शान्त कीजिए। बहुत सच है बड़े पुरुषों के हृदय में जो बात एक बार समा जाती है फिर वे उसे तब तक नहीं छोड़ते जब तक उसका उन्हें आदि अन्त मालूम न हो जाये। वज्रकुमार के आग्रह से दिवाकर देव को उसका पूर्व हाल सब ज्यों का त्यों कह देना ही पड़ा क्योंकि आग्रह से कोई बात छुपाई नहीं जा सकती। वज्रकुमार अपना हाल सुनकर बड़ा विरक्त हुआ। उसे संसार का मायाजाल बहुत भयंकर जान पड़ा। वह उसी समय विमान में चढ़कर अपने पिता की वन्दना करने को गया। उसके साथ ही उसका पिता तथा और बन्धुलोग भी गए। सोमदत्त मुनिराज मथुरा के पास एक गुफा में ध्यान कर रहे थे। उन्हें देखकर सब ही बहुत आनन्दित हुए। सब बड़ी भक्ति के साथ मुनि को प्रणाम कर जब बैठे, तब वज्रकुमार ने मुनिराज से कहा—पूज्यपाद, आज्ञा दीजिए, जिससे मैं साधु बनकर तपश्चर्या द्वारा अपना आत्मकल्याण करूँ। वज्रकुमार को एक साथ संसार से विरक्त देखकर दिवाकर देव को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने इस अभिप्राय से कि सोमदत्त मुनिराज वज्रकुमार को कहीं मुनि हो जाने की आज्ञा न दे दें, उनसे वज्रकुमार उन्हीं का पुत्र है और उसी पर मेरा राज्यभार भी निर्भर है आदि सब हाल कह दिया। इसके बाद वह वज्रकुमार से बोला—पुत्र, तुम यह क्या करते हो? तप करने का मेरा समय है या तुम्हारा? तुम अब सब तरह योग्य हो गए, राजधानी में जाओ और अपना कारोबार सम्हालो। अब मैं सब तरह निश्चिन्त हुआ। मैं आज ही दीक्षा ग्रहण करूँगा। दिवाकर देव ने उसे बहुत कुछ समझाया और दीक्षा लेने से रोका, पर उसने किसी की एक न सुनी और सब वस्त्राभूषण फेंककर मुनिराज के पास दीक्षा ले ली। कन्दर्पकेसरी वज्रकुमार मुनि साधु बनकर खूब तपश्चर्या करने लगे। कठिन से कठिन परीषह सहने लगे। वे जिनशासनरूप समुद्र के बढ़ाने वाले चन्द्रमा के समान शोभने लगे ॥५९-६८॥

अत्रान्तरे कथां वक्ष्ये शृण्वन्तु सुधियो जनाः। पूतिगन्धाभिधो राजा मथुरायां प्रवर्तते ॥६९॥
तस्योर्विला महाराज्ञी सम्यग्दृष्टिशिरोमणिः। नित्यं श्रीमज्जिनेन्द्राणां चरणार्चनकोविदा ॥७०॥
धर्मप्रभावनायां च संसक्ता श्रीजिनेशिन्याम्। नन्दीश्वरमहापर्व-दिनान्यष्टौ प्रमोदतः ॥७१॥
वर्षं प्रति त्रिवारांश्च महासंघेन संयुता। श्रीजिनेन्द्ररथोत्साहं कारयत्येव शर्मदम् ॥७२॥
तत्रैव नगरे श्रेष्ठी जातः सागरदत्तवाक्। भार्या समुद्रदत्ताख्या तयोः पुत्री बभूव च ॥७३॥
पापतः सा दरिद्राख्या दुःखदारिद्र्यकारिणी। मृते सागरदत्ताख्ये बन्धुवर्गे क्षयं गते ॥७४॥
दरिद्रा जीविता कष्टं परोच्छिष्टाऽशनैरपि। दानपूजागुणैः हीनः प्राणी स्याददुःखभाजनम् ॥७५॥
तदा तत्पुरमायातौ चर्यार्थं मुनिनायकौ। नन्दनाख्यो मुनिर्ज्येष्ठो द्वितीयश्चाभिनन्दनः ॥७६॥
तामुच्छिष्टाशनं बालां भक्षयन्तीं विलोक्य च। लघुः प्राह मुनिज्येष्ठं हाऽसौ कष्टेन जीवति ॥७७॥
इत्याकर्ण्य मुनीन्द्रोऽसौ नन्दनो ज्ञानलोचनः। अभिनन्दननामानं प्रोवाच मधुरं वचः ॥७८॥
अहो कन्या दरिद्रासौ पूतिगन्धमहीपतेः। अस्य पट्टमहाराज्ञी भविष्यति सुवल्लभा ॥७९॥
तदाकर्ण्य च भिक्षार्थं भ्रमता तत्र पत्तने। धर्मश्रीवन्दकेनोच्चैर्नान्यथा मुनिभाषितम् ॥८०॥
संचिन्त्येति दरिद्रासौ नाना मृष्टाशनादिभिः। नीत्वा शीघ्रं निजस्थानं पोषिता बहुयत्नतः ॥८१॥

वज्रकुमार के साधु बन जाने के बाद की कथा अब लिखी जाती है। इस समय मथुरा के राजा थे पूतीगन्ध। उनकी रानी का नाम था उर्विला। वह बड़ी धर्मात्मा थी, सती थी, विदुषी थी और सम्यग्दर्शन से भूषित थी। उसे जिनभगवान् की पूजा से बहुत प्रेम था। वह प्रत्येक नन्दीश्वरपर्व में आठ दिन तक खूब पूजा महोत्सव करवाती, खूब दान करती। उससे जिनधर्म की बहुत प्रभावना होती। सर्व साधारण पर जैन धर्म का अच्छा प्रभाव पड़ता। मथुरा ही में एक सागरदत्त नाम का सेठ था। उसकी गृहिणी का नाम था समुद्रदत्ता। पूर्व पाप के उदय से उसके दरिद्रा नाम की पुत्री हुई उसके जन्म से माता पिता को सुख न होकर दुःख हुआ। धन सम्पत्ति सब जाती रही। माता-पिता मर गए। बेचारी दरिद्रा के लिए अब अपना पेट भरना भी मुश्किल पड़ गया। अब वह दूसरों का झूठा खा-खाकर दिन काटने लगी। सच है पाप के उदय से जीवों को दुःख भोगना ही पड़ता है ॥६९-७५॥

एक दिन दो मुनि भिक्षा के लिए मथुरा में आए। उनके नाम थे नन्दन और अभिनन्दन। उनमें नन्दन बड़े थे और अभिनन्दन छोटे। दरिद्रा को एक-एक अन्न का झूठा कण खाती हुई देखकर अभिनन्दन ने नन्दन से कहा-मुनिराज, देखिये हाय! यह बेचारी बालिका कितनी दुःखी है? कैसे कष्ट से अपना जीवन बिता रही है। तब नन्दनमुनि ने अवधिज्ञान से विचार कर कहा-हाँ यद्यपि इस समय इसकी दशा अच्छी नहीं है तथापि इसका पुण्यकर्म बहुत प्रबल है उससे यह पूतीगन्ध राजा की पट्टरानी बनेगी। मुनि ने दरिद्रा का जो भविष्य सुनाया, उसे भिक्षा के लिए आए हुए एक बौद्ध भिक्षुक ने भी सुन लिया। उसे जैन ऋषियों के विषय में बहुत विश्वास था, इसलिए वह दरिद्रा को अपने स्थान पर लिवा लाया और उसका पालन करने लगा ॥७६-८१॥

एकदा यौवनारम्भे चैत्रमासे स्वलीलया। विलोक्यान्दोलयन्तीं तां दैवयोगान्महीपतिः ॥८२॥
 कामान्धः पूतिगन्धोसौ तद्रूपासक्तमानसः। मंत्रिणं प्रेषयामास तदर्थं वन्दिकान्तिकम् ॥८३॥
 गत्वा ते मंत्रिणः प्राहुर्भो वन्दक महीभुजे। दत्त्वा कन्यामिमां पूतां सुखीभव धनादिभिः ॥८४॥
 तेनोक्तं बौद्धधर्मं मे करोति यदि भूपतिः। तदासौ दीयते कन्या मया तस्मै गुणोज्ज्वला ॥८५॥
 तत्स्वीकृत्य ततो भूपो दरिद्रां परिणीतवान्। कामी कामाग्निसन्तप्तः किं करोति न पातकम् ॥८६॥
 दरिद्रा बुद्धदासीति स्वं प्रकाश्याभिधानकम्। प्राप्य राज्ञीपद बौद्ध-कुधर्मे तत्पराभवत् ॥८७॥
 युक्तं श्रीमज्जिनेन्द्राणां धर्मः शर्मकरो भुवि। प्राप्यते नाल्पपुण्यैश्च निधानं वा भवान्धकैः ॥८८॥
 अथ श्रीफाल्गुणे मासे नन्दीश्वरमहोत्सवे। महापूजाविधाने च रथं काञ्चननिर्मितम् ॥८९॥

दरिद्रा जैसी-जैसी बड़ी होती गई वैसे ही वैसे यौवन ने उसकी श्री को खूब सम्मान देना आरम्भ किया। वह अब युवती हो चली। उसके सारे शरीर से सुन्दरता की सुधाधारा बहने लगी। आँखों ने चंचल मीन को लजाना शुरू किया। मुँह ने चन्द्रमा को अपना दास बनाया। नितम्बों को अपने से जल्दी बढ़ते देखकर शर्म के मारे स्तनों का मुँह काला पड़ गया। एक दिन युवती दरिद्रा शहर के बगीचे में जाकर झूले पर झूल रही थी कि कर्मयोग से उसी दिन राजा भी वहीं आ गए। उनकी नजर एकाएक दरिद्रा पर पड़ी। उसे देखकर वे अचम्भे में आ गए कि यह स्वर्ग सुन्दरी कौन है? उन्होंने दरिद्रा से उसका परिचय पूछा। उसने निस्संकोच होकर अपना परिचय वगैरह सब उन्हें बता दिया। वह बेचारी भोली थी। उसे क्या मालूम कि मुझ से खास मथुरा के राजा पूछताछ कर रहे हैं। राजा तो उसे देखकर कामान्ध हो गए। वे बड़ी मुश्किल से अपने महल पर आए। आते ही उन्होंने अपने मंत्री को श्रीवन्दन के पास भेजा। मंत्री ने पहुँचकर श्रीवन्दक से कहा-आज तुम्हारा और तुम्हारी कन्या का बड़ा ही भाग्य है, जो मथुराधीश्वर उसे अपनी महारानी बनाना चाहते हैं। कहो, तुम्हें भी यह बात सम्मत है न? श्रीवन्दक बोला-हाँ मुझे महाराज की बात स्वीकार है, पर एक शर्त के साथ। वह शर्त यह है कि महाराज बौद्धधर्म स्वीकार करें तो मैं इसका ब्याह महाराज के साथ कर सकता हूँ। मन्त्री ने महाराज से श्रीवन्दक की शर्त कह सुनाई महाराज ने उसे स्वीकार किया। सच है लोग काम के वश होकर धर्मपरिवर्तन तो क्या बड़े-बड़े अनर्थ भी कर बैठते हैं ॥८२-८६॥

आखिर महाराज दरिद्रा के साथ ब्याह हो गया। दरिद्रा मुनिराज के भविष्य कथनानुसार पट्टरानी हुई। दरिद्रा इस समय बुद्धदासी के नाम से प्रसिद्ध है। इसलिए आगे हम भी इसी नाम से उसका उल्लेख करेंगे। बुद्धदासी पट्टरानी बनकर बुद्धधर्म का प्रचार बढ़ाने में सदा तत्पर रहने लगी। सच है, जिनधर्म संसार में सुख का देने वाला और पुण्य प्राप्ति का खजाना हैं, पर उसे प्राप्त कर पाते हैं भाग्यशाली ही। बेचारी अभागिनी बुद्धदासी के भाग्य में उसकी प्राप्ति कहाँ? ॥८७-८८॥

अष्टाह्निका का पर्व आया। उर्विला महारानी ने सदा के नियमानुसार अब की बार भी उत्सव करना आरम्भ किया। जब रथ निकालने का दिन आया और रथ, छत्र, चँवर, वस्त्र, भूषण, पुष्पमाला

लसन्तं पट्टकूलाद्यैः किंकिणीजालशोभितम्। नाना रत्नाञ्चितं चारु-छत्रत्रयविराजितम् ॥९०॥
घण्टाटंकारसंयुक्तं वीज्यमानं सुचामरैः। सनाथं जिनबिम्बेन पूजितं सज्जनोत्करैः ॥९१॥
प्रोल्लसत्पुष्पमालाभिः सुगन्धीकृतदिङ्मुखम्। इत्यादिबहुशोभाढ्यमुर्विलाया विलोक्य तम् ॥९२॥
बुद्धदासी नृपं प्राह क्षोभं गत्वा स्वमानसे। भो नरेन्द्र रथो मेऽत्र पूर्वं भ्रमतु पत्तने ॥९३॥
तदाकर्ण्य तदासक्तो नृपः प्राह भवत्विति। मोहान्धा नैव जानन्ति गोक्षीरार्कपयोन्तरम् ॥९४॥
उर्विला च महाराज्ञी जिनपादाब्जयो रता। पत्तने प्रथमं मे वै यदा भ्रमति सद्रथः ॥९५॥
तदाहारप्रवृत्तिर्मे प्रतिज्ञामिति मानसे। कृत्वा शीघ्रं तदा गत्वा क्षत्रियाख्यां गुहां सती ॥९६॥
सोमदत्तमुनिं नत्वा भक्तितो धर्मवत्सला। तथा वज्रकुमाराख्यं प्रणम्य मुनिसत्तमम् ॥९७॥
अहो मुने जिनेन्द्राणां सद्धर्माब्धुचन्द्रमाः। त्वमेव शरणं मेऽस्ति मिथ्यात्वध्वान्तभास्करः ॥९८॥
इति स्तुत्वा महाभक्त्या जगाद निजवृत्तकम्। संस्थिता तत्पदांभोज-मूले यावद्गुणोज्ज्वला ॥९९॥
तौ दिवाकरदेवाद्यास्तदा विद्याधरेशिनः। तं वन्दितुं समायाता मुनीन्द्रौ पुण्यपाकतः ॥१००॥
तदा वज्रकुमारेण मुनीन्द्रेण लसद्भिया। प्रोक्तं भो भूपते शीघ्रं भवद्भिर्धर्मवत्सलैः ॥१०१॥
उर्विलाया महाराज्ञ्याः सम्यग्दृष्टिशिरोमणेः। यात्रा रथस्य जैनैर्द्रीं कर्तव्या परमादरात् ॥१०२॥

आदि से खूब सजाया गया, उसमें भगवान् की प्रतिमा विराजमान की जाकर वह निकाला जाने लगा, तब बुद्धदासी ने राजा से यह कह कर, कि पहले मेरा रथ निकलेगा, उर्विला रानी का रथ रुकवा दिया। राजा ने भी उस पर कुछ बाधा न देकर उसके कहने को मान लिया। सच है- ॥८९-९४॥

अर्थात् मोह से अन्धे हुए मनुष्य गाय के दूध में और आकड़े के दूध में कुछ भी भेद नहीं समझते। बुद्धदासी के प्रेम ने यही हालत पूतिगंधराजा की कर दी। उर्विला को इससे बहुत कष्ट पहुँचा। उसने दुःखी होकर प्रतिज्ञा कर ली कि जब पहले मेरा रथ निकलेगा तब ही मैं भोजन करूँगी। यह प्रतिज्ञा कर वह क्षत्रिया नाम की गुफा में पहुँची। वहाँ योगिराज सोमदत्त और वज्रकुमार महामुनि रहा करते हैं। वह उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर बोली-हे जिनशासन रूप समुद्र के बढ़ाने वाले चन्द्रमाओं और हे मिथ्यात्वरूप अन्धकार के नष्ट करने वाले सूर्य! इस समय आप ही मेरे लिए शरण हैं। आप ही मेरा दुःख दूर कर सकते हैं। जैनधर्म पर इस समय बड़ा संकट उपस्थित है, उसे नष्ट कर उसकी रक्षा कीजिए। मेरा रथ निकलने वाला था, पर उसे बुद्धदासी ने महाराज से कहकर रुकवा दिया है। आजकल वह महाराज की बड़ी कृपापात्र है, इसलिए जैसा वह कहती है महाराज भी बिना विचारे वही कहते हैं। मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि सदा की भाँति मेरा रथ पहले निकलेगा तब ही मैं भोजन करूँगी। अब जैसा आप उचित समझें वह कीजिए। उर्विला अपनी बात कर रही थी कि इतने में वज्रकुमार तथा सोमदत्त मुनि की वन्दना करने को दिवाकर देव आदि बहुत से विद्याधर आए। वज्रकुमार मुनि ने उनसे कहा-आप लोग समर्थ हैं और इस समय जैनधर्म पर कष्ट उपस्थित है। बुद्धदासी ने महारानी उर्विला का रथ रुकवा दिया है। सो आप जाकर जिस तरह बन सके इसका रथ निकलवाइये। वज्रकुमार मुनि

तच्छ्रुत्वा ते मुनेर्वाक्यं सर्वविद्याधरा द्रुतम्। तौ प्रणम्य मुनी भक्त्या सम्प्राप्ता मथुरापुरीम् ॥१०३॥
 स्वयं ते श्रीजिनेन्द्राणां धर्मकर्मपरायणाः। किं पुनः प्रेरितास्तेन मुनीन्द्रेण सुकर्मणि ॥१०४॥
 तत्र कोपेन ते प्रोच्चैर्बुद्धदास्या रथं भटान्। चूर्णीकृत्य समं तस्या महागर्वेण वेगतः ॥१०५॥
 उर्विलाया महादेव्या जिनधर्माप्तचेतसः। संचक्रे परमानन्दा-द्रथयात्रामहोत्सवम् ॥१०६॥
 नदत्सु सर्ववादित्र-प्रकारेषु समन्ततः। स्तुवत्सु भव्यलोकेषु चारणेषु पठत्सु च ॥१०७॥
 समन्ताज्जयघोषेषु पुष्पवृष्टियुतेषु च। नाना नृत्यविनोदेषु कामिनीगीतहारिषु ॥१०८॥
 दीयमानेषु दानेषु प्रोल्लसत्प्रमदेषु च। अनेकभव्यलोकानां वर्द्धमानेषु सुदृष्टिषु ॥१०९॥
 जिनेन्द्रप्रतिमोपेतः सर्वसंधैरलंकृतः। संचचाल महाभूत्या रथः पूर्णमनोरथः ॥११०॥
 उर्विलाया महादेव्याः सर्वेषां भव्यदेहिनाम्। संजातः परमानन्दः स केनात्र प्रवर्ण्यते ॥१११॥
 जैनधर्मस्य ते सर्वे संविलोक्य प्रभावनाम्। राजा पूतिमुखो भक्त्या बुद्धदासी तथापरे ॥११२॥
 त्यक्त्वा मिथ्यामतं शीघ्रं वान्तिवद्दुःखकारणम्। जैनधर्मे जगत्पूज्ये संजाता नितरां रताः ॥११३॥
 एवं वज्रकुमारोसौ मुनीन्द्रो धर्मवत्सलः। कारयामास संप्रीत्या जैनधर्मप्रभावनाम् ॥११४॥
 अन्यैश्चापि महाभव्यैः स्वर्गमोक्षप्रदायिनी। प्रभावना जिनेन्द्रोक्ते धर्मे कार्या जगद्धिता ॥११५॥
 नाना यात्राप्रतिष्ठाभि-र्गर्हिष्ठाभिर्विशिष्टधीः। जैनशासनमुद्दिश्य यः करोति प्रभावनाम् ॥११६॥
 धर्मानुरागतो धीमान्सम्यग्दृष्टिः शिरोमणिः। स भवेत्त्रिजगत्पूज्यः स्वर्गमोक्षसुखाधिपः ॥११७॥

की आज्ञानुसार सब विद्याधर लोग अपने विमान पर चढ़कर मथुरा आए। सच है जो धर्मात्मा होते हैं वे धर्म प्रभावना के लिए स्वयं प्रयत्न करते हैं, तब उन्हें तो मुनिराज ने स्वयं प्रेरणा की है, इसलिए रानी उर्विला को सहायता देना तो उन्हें आवश्यक ही था। विद्याधरों ने पहुँचकर बुद्धदासी को बहुत समझाया और कहा, जो पुरानी रीति है उसे ही पहले होने देना अच्छा है। पर बुद्धदासी को तो अभिमान आ रहा था, इसलिए वह क्यों मानने चली? विद्याधरों ने सीधेपन से अपना कार्य होता हुआ न देखकर बुद्धदासी के नियुक्त किए हुए सिपाहियों से लड़ना शुरू किया और बात की बात में उन्हें भगाकर बड़े उत्सव और आनन्द के साथ उर्विला रानी का रथ निकलवा दिया। रथ के निर्विघ्न निकलने से सबको बहुत आनन्द हुआ। जैनधर्म की भी खूब प्रभावना हुई बहुतों ने मिथ्यात्व छोड़कर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया। बुद्धदासी और राजा पर भी इस प्रभावना का खूब प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी शुद्धान्तःकरण से जैनधर्म स्वीकार किया ॥११५-११३॥

जिस प्रकार श्रीवज्रकुमार मुनिराज ने धर्म प्रेम के वश होकर जैनधर्म की प्रभावना करवाई उसी तरह और धर्मात्मा पुरुषों को भी संसार का उपकार करने वाली और स्वर्ग सुख की देने वाली धर्म प्रभावना करना चाहिए। जो भव्य पुरुष, प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार, रथयात्रा, विद्यादान, आहारदान, अभयदान आदि द्वारा जिनधर्म की प्रभावना करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि होकर त्रिलोक पूज्य होते हैं और अन्त में मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं ॥११४-११७॥

स श्रीवज्रकुमारोत्र जिनधर्मे सुवत्सलः। नित्यं जैनमते कुर्यान्मतिं मे मुनिनायकः ॥११८॥

गच्छे श्रीमति मूलसंघतिलके श्रीशारदायाः शुभे

श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुः सूरिः श्रुताब्धिः सुधीः।

सम्यग्दर्शनबोधवृत्तविलसद्रत्नाकरोनिर्मलो

दद्यान्मे वरमंगलानि नितरां भक्त्या समाराधितः ॥११९॥

इति कथाकोशे प्रभावनाङ्गे वज्रकुमार मुनेः कथा समाप्ता।

१४. नागदत्तमुनेः कथा

नत्वा पंच गुरुभक्त्या पंचमीगतिनायकान्। नागदत्तमुनेश्चारु चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥

देशेऽत्र मगधे ख्याते रम्ये राजगृहे पुरे। प्रजापालो महाराजः प्रजापालनतत्परः ॥२॥

धार्मिको न्यायशास्त्रज्ञो जिनभक्तिपरायणः। तद्राज्ञी प्रियधर्माख्या दानपूजाप्रसन्नधीः ॥३॥

तयोर्बभूवतुः पुत्रौ विख्यातौ गुणशालिनौ। ज्येष्ठोसौ प्रियधर्माख्यो द्वितीयः प्रियमित्रवाक् ॥४॥

एकदा राजपुत्रौ तौ दीक्षां जैनीं समाश्रितौ। तपः कृत्वाच्युते स्वर्गे देवौ जातौ महर्द्धिकौ ॥५॥

ज्ञात्वा पूर्वभवं तत्र प्रशस्य जिनशासनम्। कुर्वाणौ जैनसद्भक्तिं संस्थितौ सुखतश्च तौ ॥६॥

धर्म प्रेमी श्रीवज्रकुमार मुनि मेरी बुद्धि को संदा जैनधर्म में दृढ़ रखें, जिसके द्वारा मैं भी कल्याण पथ पर चलकर अपना अन्तिम साध्य मोक्ष प्राप्त कर सकूँ ॥११८॥

श्रीमल्लिभूषण गुरु मुझे मंगल प्रदान करें, वे मूल संघ के प्रधान शारदा गच्छ में हुए हैं। वे ज्ञान के समुद्र हैं और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नों से अलंकृत हैं। मैं उनकी भक्तिपूर्वक आराधना करता हूँ ॥११९॥

१४. नागदत्त मुनि की कथा

मोक्ष राज्य के अधीश्वर श्रीपंच परम गुरु को नमस्कार कर श्री नागदत्त मुनि का सुन्दर चरित्र मैं लिखता हूँ ॥१॥

मगधदेश की प्रसिद्ध राजधानी राजगृह में प्रजापाल नाम के राजा थे। वे विद्वान् थे, उदार थे, धर्मात्मा थे, जिनभगवान् के भक्त थे और नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करते थे। उनकी रानी का नाम था प्रियधर्मा वह भी बड़ी सरल स्वभाव की सुशील थी। उसके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे प्रियधर्म और प्रियमित्र। दोनों भाई बड़े बुद्धिमान् और सुचरित थे ॥२-४॥

किसी कारण से दोनों भाई संसार से विरक्त होकर साधु बन गए और अन्त समय समाधिमरण कर अच्युतस्वर्ग में जाकर देव हुए। उन्होंने वहाँ परस्पर में प्रतिज्ञा की कि, “जो दोनों में से पहले मनुष्य पर्याय प्राप्त करे उसके लिए स्वर्गस्थ देव का कर्तव्य होगा कि वह उसे जाकर सम्बोधे और संसार से विरक्त कर मोक्षसुख को देने वाली जिनदीक्षा ग्रहण करने के लिए उसे उत्साहित करे।” इस प्रकार